पुनरीक्षण सिविल

माननिए मुख्य न्यायमूर्ति हरबंस सिंह और माननिए न्यायमूर्ति गुरदेव सिंह के समक्ष

मंडल कार्मिक अधिकारी, दिल्ली डिवीजन उत्तर रेलवे, न्यू दिल्ली आदि याचिकाकर्ताओं।

बनाम

जसवन्त राय आदि, उत्तरदाताओं।

1969 का सिविल संशोधन संख्या 389

27 अप्रैल, 1972 को लिया गया फैसला

मजदूरी संदाय अधिनियम (1936 का IV) - धारा 15 - प्राधिकरण– क्या दंडित करने वाले प्राधिकारी के आदेश की वैधता में जाने का अधिकार है जिसके परिणामस्वरूप मजदूरी की कटौती होती है।

अभिनिर्धारित :

मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 की धारा 15 के तहत मजदूरी के भुगतान में की गई कटौतियों से उत्पन्न दावों से निपटने वाला प्राधिकरण इस प्रश्न पर विचार कर सकता है कि क्या मजदूरी की कटौती के परिणामस्वरूप दंड देने वाले प्राधिकारी के पास अधिकार था और उसका आदेश कानून के किसी अनिवार्य प्रावधान का उल्लंघन नहीं है। यदि दंड देने वाले प्राधिकारी का आदेश मान्य है और *प्रथम दृष्टया* कानून या प्रासंगिक नियमों के किसी भी प्रावधान के विपरीत नहीं है, तो अधिनियम की धारा 15 के तहत दावे से निपटने वाले प्राधिकरण के पास उस आदेश को प्रभावी करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। दूसरी ओर, यदि उठाई गई आपत्ति में कुछ जांच की आवश्यकता होती है या कानून या तथ्य का जटिल प्रश्न शामिल होता है, तो ऐसा प्राधिकारी उस मामले में जाने के लिए सक्षम नहीं है।

(पैरा 9)

मुख्य न्यायाधीश हरबंस सिंह द्वारा कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए डिवीजन बेंच को भेजे गए मामले को मुख्य न्यायाधीश हरबंस सिंह और माननिए न्यायमूर्ति गुरदेव सिंह की खंडपीठ ने अंततः मामले का फैसला किया।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका, जिसमें प्रार्थना की गई है कि प्रतिवादी संख्या 20 जनवरी, 1969 का आक्षेपित आदेश जारी किया जाए। 2 को संशोधित किया जाए और पूरे खर्च के साथ अलग रखा जाए।

याचिकाकर्ताओं की ओर से अधिवक्ता एचएस गुरजराल।

श्रीमती सुरजीत बिंद्रा, एडवोकेट और सुरजीत सिंह। प्रतिवादियों के लिए वकील।

निर्णय

न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा दिया गया था -

न्यायमूर्ति गुरदेव सिंह– यह आदेश 1969 की सिविल पुनरीक्षण याचिका संख्या 389 और 1969 की 389-ए का निपटारा करेगा, जो वेतन भुगतान अधिनियम, अंबाला शहर के तहत प्राधिकरण के आदेश के खिलाफ निर्देशित हैं, जिसके तहत मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 15 (2) के तहत प्रतिवादियों के आवेदनों को उनकी वेतन वृद्धि को रोकने के कारण मजदूरी से काटी गई राशि की वसूली के लिए अनुमति दी गई है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वे दण्डदेने वाले प्राधिकारी के आदेश के पीछे जाने के लिए अधिनियम के अंतर्गत अपीलीय प्राधिकारी की क्षमता के संबंध में कानून के सामान्य प्रश्न उठाते हैं, माननिए मुख्य न्यायमूर्ति, जिनके समक्ष ये याचिकाएं मूल रूप से आई थीं, ने इन मामलों को निर्णय के लिए इस पीठ को भेज दिया।

(2) हमारे समक्ष प्रतिवादियों जसवंत राय और भगवती प्रसाद को सक्षम प्राधिकारी द्वारा विभिन्न आरोपों में उनके खिलाफ की गई जांच के परिणामस्वरूप क्रमशः एक और दो साल के लिए वेतन वृद्धि रोकने की सजा सुनाई गई थी, जिसका विवरण हमारे उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक नहीं है। दोनों ने वेतन वृद्धि रोकने के कारण अपने वेतन से काटी गई राशि की वसूली के लिए आवेदन किया था। अधिनियम के तहत नियुक्त प्राधिकरण ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए कहा था कि उनकी वेतन वृद्धि को रोकने के आदेश अवैध थे। हमारे विचारार्थ जो संक्षिप्त प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या अधिनियम के अंतर्गत नियुक्त प्राधिकारी के पास दण्डात्मक प्राधिकारी के इन आदेशों की वैधता की जांच करने का अधिकार है।

(3) उस मुद्दे को संबोधित करने से पहले, यह ध्यान देने योग्य है कि विचाराधीन दोनों मामलों में, दंडात्मक प्राधिकरण के आदेशों में रेलवे अधिकारियों के खिलाफ सिद्ध आरोपों के संबंध में उसके निष्कर्षों का समर्थन करने वाले किसी भी कारण का अभाव है। इन आदेशों को अप्रवर्तनीय घोषित करते हुए, अधिनियम के तहत नियुक्त प्राधिकरण ने देवी दीन बनाम मंडल परिचालन अधीक्षक, उत्तर रेलवे और अन्य A.I.R 1968 355 का हवाला दिया है और माननिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गणेशी राम आदि में स्थापित कानूनी सिद्धांत बनाम जिला मजिस्ट्रेट और एक अन्य ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 356 पे विचार किया। इस सिद्धांत के अनुसार, एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण के आदेश को उन कारणों को स्पष्ट करना चाहिए जिन पर यह आधारित है। इसके अतिरिक्त, रेलवे स्थापना संहिता (संहिता के रूप में संदर्भित) के पैराग्राफ 1716 का संदर्भ दिया गया था, जो मामूली दंड लगाने की प्रक्रिया को रेखांकित करता है और यह निर्धारित करता है कि ऐसे मामलों में कार्यवाही के रिकॉर्ड में मामले पर आदेश के साथ-साथ कारण भी शामिल होने चाहिए।

(4) यह प्रश्न कि क्या अधिनियम के तहत प्राधिकरण के पास दंड के आदेश की वैधता पर फैसला सुनाने का अधिकार क्षेत्र था, यह रएस इंटेगरा नहीं है। इस मामले पर विचारों में काफी भिन्नता रही है जिसका संदर्भ इस न्यायालय के पूर्व के कुछ निर्णयों में दिया गया है। ~~It will suffice here to refer to *N. Venkatyaradan* v. *Sembiam Saw Mill* A.I.R.~~यहां एन वेंकट्यारदन *बनाम कर्नाटक* का उल्लेख करना पर्याप्त होगा /*सेम्बियम सॉ मिल* ए.आई.आर 1955 ~~Mad 597 and *Union of*~~

~~*India v. Babu Ram* A.I.R.~~मद्रास 597 और *यूनियन ऑफ इंडिया* वी. *बाबू राम* ए.आई.आर. 1962 अलहाबाद 521 *वेंकट्यारदन के मामले (*उपर्युक्त) में यह फैसला सुनाया गया था कि यह सवाल कि क्या सरकारी कर्मचारी की सेवाओं को वैध रूप से समाप्त कर दिया गया था, अधिनियम के तहत नियुक्त प्राधिकरण के दायरे से बाहर का मामला था। इसी तरह का दृष्टिकोण बॉम्बे उच्च न्यायालय ने *ए. आर. सरीन* बनाम बॉम्बे *हाईकोर्ट ने भी अपनाया था। बी.सी. पाटिल और एक अन्य* ए.आई.आर. 1951 बॉम्बे 423 और *विश्वनाथ तुकाराम* बनाम *महाप्रबंधक, मध्य रेलवे और अन्य* एआईआर 1958 बॉम्बे 111 (एफ.बी.) हालांकि, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के माननिए न्यायमूर्ति धवन इस विचार से सहमत नहीं थे और *बाबू राम (उपर्युक्त)* में फैसला सुनाया कि अधिनियम के तहत प्राधिकरण यह निर्धारित कर सकता है कि सेवाओं की समाप्ति या कर्मचारियों की बर्खास्तगी गलत थी या नहीं।

(5) इस अधिनियम के अंतर्गत नियुक्त प्राधिकरण के क्षेत्राधिकार के कार्यक्षेत्र पर श्री अंबिका मिल्स कं, लि *में उच्चतम न्यायालय के उनके लॉर्डशिप द्वारा विचार किया गया* है। बहुत। *श्री एस बी भट्ट और एक अन्य* एआईआर 1961 एस.सी. 970, जहां इसे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:-

> "मजदूरी के भुगतान में की गई कटौती या देरी से उत्पन्न दावों से निपटने में, प्राधिकरण को अनिवार्य रूप से उक्त मामलों से संबंधित प्रश्नों पर विचार करना होगा। इन आनुषंगिक प्रश्नों के दायरे का निर्धारण करते समय यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि आनुषंगिक मामलों पर निर्णय लेने की आड़ में सीमित क्षेत्राधिकार अनुचित रूप से न बढ़ाया जाए। इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि इन आनुषंगिक प्रश्नों का दायरा अनावश्यक रूप से सीमित न हो ताकि प्राधिकारी को प्रदत्त सीमित क्षेत्राधिकार को प्रभावित या बिगाड़ा जा सके। ****
>
> लेकिन हम वर्तमान अपील में इन संभावित सवालों पर विचार करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं, क्योंकि, हमारी राय में, किसी भी कठोर और तेज या सामान्य नियम को निर्धारित करना अनुचित होगा जो आकस्मिक तथ्यों के क्षेत्र को सीमांकित करने के लिए एक निर्धारण परीक्षण प्रदान करेगा, जिसे प्राधिकरण द्वारा वैध रूप से माना जा सकता है और जिन पर विचार नहीं किया जा सकता है।

(6) इस न्यायालय के तीन निर्णय हैं जिनमें अधिनियम के तहत प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र की सीमा पर विचार किया गया था। *भारत संघ और अन्य* में *1962 के जोगिंदर सिंह* सीएम नंबर 566 ने 10 अक्टूबर, 1962 को फैसला सुनाया, जिसमे माननिए न्यायमूर्ति एसएस दुलत और डीके महाजन ने *श्री अंबिका मिल्स मामले* का उल्लेख करने और बॉम्बे और इलाहाबाद उच्च न्यायालयों के बीच विचारों में भिन्नता को देखते हुए, बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के साथ अपनी सहमति व्यक्त की और कहा :–

> "उन्होंने कहा, "हमें लगता है कि इस मामले में कोई विसंगति नहीं है। जैसा कि श्री अम्बिका मिल्स के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कहा गया है, न्यायाधिकरण को अधिनियम के तहत अपने दायरे के भीतर मुद्दों को संबोधित करते हुए, मजदूरी कटौती या भुगतान में देरी से उत्पन्न दावों से संबंधित आकस्मिक प्रश्नों पर विचार करना चाहिए। 'आनुषंगिक प्रश्न' शब्द

वास्तव में उन मामलों को संदर्भित करता है जो वास्तव में आनुषंगिक हैं, न कि उन मुद्दों को जो उचित रूप से सामान्य अदालतों के अधिकार क्षेत्र में आते हैं। हमारे परिप्रेक्ष्य में, स्थापित मामले इस सिद्धांत पर निर्भर करते हैं कि जब सीधे तथ्यात्मक प्रश्नों के निर्धारण की आवश्यकता होती है, तो न्यायाधिकरण उनकी जांच करेगा और उनका निर्णय करेगा। हालांकि, जब जटिल कानूनी प्रश्न उत्पन्न होते हैं, विशेष रूप से जो भारत के संविधान की व्याख्या से संबंधित होते हैं, तो न्यायाधिकरण ऐसे मामलों में गहराई से विचार नहीं करेगा। दूसरे शब्दों में, न्यायाधिकरण के पास ऐसे मुद्दों को संभालने का अधिकार क्षेत्र नहीं है। इस मामले में मुख्य मुद्दे में मुख्य रूप से भारत के संविधान की व्याख्या शामिल है, एक ऐसा मामला जिसे निर्णय के लिए न्यायाधिकरण को सौंपे जाने की संभावना नहीं है। यह एक मौलिक कानूनी सिद्धांत है कि एक विशेष न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र का विस्तार नहीं किया जाना चाहिए। सभी सिविल मामले सिविल न्यायालयों द्वारा समाधान के लिए होते हैं, और उनकी अधिकारिता को बाहर करने का कोई भी प्रयास स्पष्ट और स्पष्ट होना चाहिए; यह निहित नहीं किया जा सकता है। इसलिए, सिद्धांतों और स्थापित कानूनी उदाहरणों दोनों के आधार पर, हमें यह प्रतीत होता है कि बॉम्बे उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण, यह कहते हुए कि न्यायाधिकरण के पास याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने वाले आदेश की वैधता और वैधता तय करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है, सही है। पूरे सम्मान के साथ, न्यायमूर्ति धवन का निर्णय एक ठोस कानूनी नियम स्थापित नहीं करता है।

उत्तर रेलवे के दिल्ली मंडल के मंडल अधीक्षक बनाम सतवेंद्र नाथ कपूर चंद और एक अन्य (एआईआर 1964 पीबी 242) मामले में एक अन्य पीठ द्वारा दिए गए पिछले फैसले में न्यायमूर्ति सीबी कपूर और पीसी पंडित ने फैसला सुनाया कि यदि दंड देने वाला प्राधिकारी संहिता के पैराग्राफ 1702 और 1712 का उल्लंघन करते हुए वेतन वृद्धि रोकने का जुर्माना लगाता है, तो प्राधिकरण को यह घोषित करने का अधिकार है कि आदेश से होने वाली मजदूरी हानि अनधिकृत कटौती है। अधिनियम की धारा 11 से धारा 7 (1) के तहत मजदूरी से। हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि इस निर्णय को तथ्यों के आधार पर अलग किया जा सकता है, क्योंकि आदेश जारी करने वाले संभागीय अधीक्षक के पास विवादित निर्णय लेने की क्षमता का अभाव था। उस मामले का निपटारा करते समय, माननिए न्यायमूर्तियों ने कहा-

इस मामले में, विशेष रूप से विचार करना अनावश्यक है कि क्या चुनौती दिए गए आदेश के तहत जुर्माना लगाने का कोई वैध कारण था। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह स्पष्ट है कि संभागीय अधीक्षक के पास उस आदेश को जारी करने का अधिकार नहीं था।

(7) इन दोनों पीठ निर्णयों को न्यायमूर्ति ए. एन. ग्रोवर (अब सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति) ने मंडल कार्मिक अधिकारी, उत्तर रेलवे, दिल्ली मंडल बनाम गुरु दास (1966 का सीआर नंबर 46) में 12 मई 1967 को ध्यान में रखते हुए निर्णय लिया था। इस मामले में, अधिनियम के तहत प्राधिकरण ने निर्धारित किया कि सहायक यांत्रिक अभियंता, दिल्ली डिवीजन द्वारा संबंधित रेलवे कर्मचारी पर

लगाया गया एक वर्ष के लिए वेतन वृद्धि रोकने का जुर्माना अमान्य था क्योंकि संहिता के पैराग्राफ 1716 में निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था। श्री अंबिका मिल्स मामले और गणेशी राम आदि के मामले में विभिन्न अधिकारियों का संदर्भ देने और उनके लॉर्डशिप के निर्णयों पर विचार करने के बाद। जिला मजिस्ट्रेट और अन्य, यह निष्कर्ष निकाला गया था कि अधिनियम के तहत प्राधिकरण के पास वेतन वृद्धि रोकने की सजा लगाने के आदेश की वैधता और वैधता का आकलन करने की क्षमता थी। इस निष्कर्ष पर पहुंचने में, विद्वान न्यायमूर्ति ने निम्नानुसार टिप्पणी की-

> "कानूनी निर्णयों में प्रचलित पैटर्न से पता चलता है कि सेवा से प्रत्यावर्तन और बर्खास्तगी जैसे कार्यों की वैधता की जांच अधिनियम के तहत एक प्राधिकरण द्वारा नहीं की जा सकती है। हालांकि, वर्तमान मामला एक अलग मुद्दे के इर्द-गिर्द घूमता है। इसके अतिरिक्त, श्री प्रताप सिंह यह प्रदर्शित करने में विफल रहे हैं कि न्यायमूर्ति कपूर द्वारा डिवीजनल अधीक्षक, दिल्ली डिवीजन, उत्तर रेलवे बनाम सतवेंद्र नाथ, आदि में संदर्भित अधिसूचना, जो अधिनियम की धारा 7 की उप-धारा (1) के स्पष्टीकरण II के तहत जारी की गई थी, उन मामलों में से किसी में भी चर्चा की गई थी। मैं पीठ के फैसले से बाध्य हूं और सम्मानपूर्वक उसी का पालन करते हुए मैं विद्वान जिला न्यायाधीश के आदेशों की पुष्टि करता हूं। * * *".

यह एकल पीठ का निर्णय और निर्णय *मंडल अधीक्षक, दिल्ली मंडल, उत्तर रेलवे* बनाम *उत्तर रेलवेसत्येंद्र नाथ, कपूर चंद और एक अन्य* (उपर्युक्त) हमारे सामने मौजूद मामले के तथ्यों पर स्पष्ट रूप से अलग-अलग हैं, क्योंकि उन दोनों मामलों में यह पाया गया था कि दंड देने वाले प्राधिकारी का आदेश संहिता के पैराग्राफ 1712 का उल्लंघन था और अधिकार क्षेत्र से परे था। वर्तमान मामले में, इस बात पर कोई आपत्ति नहीं है कि आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना या संहिता के पैराग्राफ 1712 में उल्लिखित प्रक्रिया के उल्लंघन में जारी किया गया था। इसे केवल इस आधार पर अमान्य किया जा रहा है कि इसमें बताए गए कारणों का अभाव है। यदि आदेश में कारण दिए गए थे, तो कोई वैध रूप से तर्क दे सकता है कि अधिनियम के तहत नामित प्राधिकरण उन कारणों की पर्याप्तता या सटीकता की जांच करने के लिए अधिकृत नहीं है। यह संहिता के पैराग्राफ 1716 का उल्लंघन करता है, विशेष रूप से खंड (ख) जो स्पष्ट रूप से कहता है कि ऐसी कार्यवाही के रिकॉर्ड में आदेश के साथ-साथ कारणों को भी शामिल किया जाना चाहिए। यह आदेश, अपने चेहरे पर, उन जांचों को नियंत्रित करने वाले अनिवार्य प्रावधानों का उल्लंघन करता है जिसमें इसे जारी किया गया था।

(8) यद्यपि हमारे समक्ष इस मामले में कोई शिकायत नहीं है कि सजा देने वाले अधिकारियों के पास अधिकार क्षेत्र का अभाव है, तथापि, यह आग्रह किया जाता है कि उनके द्वारा पारित आदेश स्पष्ट रूप से गैर-राजपत्रित कर्मचारियों के लिए अनुशासन और अपील नियमों के नियम 1702 और 1716 का उल्लंघन करते हैं, जो आचरण और अनुशासन नियम, खंड 1 के अध्याय XVII में निहित हैं। तदनुसार, उपरोक्त दो मामलों का अनुपात लागू होगा। हम इस तर्क में काफी ताकत देखते हैं। नियम 1702 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वेतनवृद्धि को रोकने सहित सूचीबद्ध दंड "अच्छे और पर्याप्त

कारणों से" लागू किए जा सकते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इस तरह के दंड को लागू करने वाले किसी भी आदेश को सहायक कारण प्रदान करने चाहिए। इसके अतिरिक्त, नियम 1716 में कहा गया है कि संबंधित अध्याय के नियमों के तहत दंड लगाने वाले प्राधिकरण द्वारा बनाए गए रिकॉर्ड में अन्य बातों के अलावा, "निष्कर्ष और इसके कारण" शामिल होने चाहिए। इसलिए, यह स्पष्ट है कि दोनों मामलों में उत्तरदाताओं के लिए वेतन वृद्धि को रोकने का निर्णय इन दोनों नियमों का उल्लंघन करता है। यह निर्धारित करने के लिए कि ये आदेश कानूनी रूप से त्रुटिपूर्ण थे और उन्हें लागू नहीं किया जा सकता था, अधिनियम की धारा 15 (2) के तहत उत्तरदाताओं के आवेदनों को संभालने वाले प्राधिकरण को केवल इन नियमों को संदर्भित करने की आवश्यकता थी। जटिल कानूनी या तथ्यात्मक मामलों की व्यापक जांच या चर्चा की कोई आवश्यकता नहीं थी।ऐसा करते हुए उसने एक आकस्मिक प्रश्न में जाकर अपने कर्तव्य का निर्वहन किया, जो *श्री अंबिका मिल्स* और *गणेशी राम के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के अनुसार*, ऐसा करने के लिए सक्षम था।

(9) इस न्यायालय और सर्वोच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों से, जिन पर पहले निर्देश किया जा चुका है, यह बात सामने आती है कि अधिनियम की धारा 15 के अधीन दावों से निपटने वाला प्राधिकरण इस प्रश्न पर विचार कर सकता है कि क्या दंड अधिरोपित करने वाले प्राधिकारी के आदेश की अधिकारिता थी और यह कि उसका आदेश किसी अनिवार्य उपबंध का उल्लंघन नहीं करता है। इसके बावजूद आदेश वैध है और प्रथम दृष्टया कानून के किसी प्रावधान या प्रासंगिक नियमों के विपरीत नहीं है, अधिनियम की धारा 15 के तहत दावे से निपटने वाले प्राधिकरण के पास उस आदेश को प्रभावी बनाने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। यदि दूसरी ओर उठाई गई आपत्ति के लिए कुछ जांच की आवश्यकता होती है या इसमें कानून या तथ्य का जटिल प्रश्न शामिल होता है, तो संबंधित प्राधिकरण मामले में जाने के लिए सक्षम नहीं होगा।

(10) यहां अधिनियम की धारा 7 का संदर्भ दिया जा सकता है जो "मजदूरी से की जा सकने वाली कटौती" निर्धारित करता है। अधिनियम की धारा 7(1) के स्पष्टीकरण II में निम्नलिखित प्रावधान है -

अर्थात् निम्नलिखित दंड, में से किसी के कार्यरत एक व्यक्ति पर अच्छा और पर्याप्त कारण के लिए लगाए जाने, जिसके परिणामस्वरूप से मजदूरी के किसी भी हानि: -

(i) वेतन-वृद्धि या प्रोन्निंत का विधारण (जिसके अन्तगर्त दक्षता रोध पर वेतन वृद्धि का रोका जाना आता है)

(ii) किसी निम्नतर पद या काल-वेतमान पर या काल-वेतनमान में के किसी निम्नतर प्रक्रम पर अवनित; अथवा

(iii) निलंबन,

में से किसी अिधरोपण, अच्छे और पयार्प्त कारण से, किए जाने के पिरणामस्वरूप हुई मजदूरी की कोई हानि किसी ऐसे मामले मे मजदूरी में से कटौती नहीं समझी जाएगी, जहां कि ऐसी किसी शास्ति

के अिधरोपण के लिए नियोजक द्वारा विरिचत नियम' उन अपेक्षाओं के, यिद कोई हो, अनरूप हो , जो राज्य सरकार द्वारा, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा , इस निमत्त बिनिद्रीष्ट की जाएं ।]

यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि जहां दावे का एक हिस्सा रोके गए वेतन वृद्धि से संबंधित है, दावे से संबंधित प्राधिकरण को यह देखना होगा कि क्या उस खाते पर ऐसे मामलों में मजदूरी से कटौती नियोक्ता द्वारा तैयार किए गए नियमों के अनुरूप है, जो राज्य सरकार द्वारा आधिकारिक राजपत्र में निर्दिष्ट किया जा सकता है। अधिनियम की धारा 7 (2) उन कटौतियों को निर्धारित करती है जो एक नियोजित व्यक्ति के वेतन से की जा सकती हैं। इसके खंड (एच) में ऐसी कटौतियों में "ऐसा आदेश देने के लिए सक्षम न्यायालय या अन्य प्राधिकारी के आदेश द्वारा की जाने वाली अपेक्षित कटौती" शामिल है।

(11) यह इस बात पर जोर देता है कि वेतन वृद्धि के निलंबन के कारण वेतन में कमी को केवल तभी मान्य माना जाएगा जब निर्णय किसी सक्षम अदालत या प्राधिकरण द्वारा अधिकृत हो। इसका तात्पर्य यह है कि वेतन वसूली अनुरोध को संभालने वाले निकाय के पास यह आकलन करने का अधिकार है कि क्या वेतन वृद्धि को रोकने का आदेश एक सक्षम अदालत या प्राधिकरण द्वारा जारी किया गया था, जो पहले के निष्कर्ष को मजबूत करता है।

(12) तदनुसार, हम पाते हैं कि अधिनियम की धारा 15 (2) के तहत नियुक्त प्राधिकरण के आक्षेपित आदेशों में से कोई भी किसी भी खामी से ग्रस्त नहीं है। इस प्रकार, दोनों याचिकाएं विफल हो जाती हैं और लागत के साथ खारिज कर दी जाती हैं।

बी.एस.जी.

——